लद्दाख की थंका चित्रकला एक ऐतिहासिक विश्लेषण

विरेन्द्र कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग
एम०एम०एच० कॉलिज, गाजियाबाद (उ०प्र०)
ईमेलः kumarviren1986@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

विरेन्द्र कुमार

लद्दाख की थंका चित्रकला एक ऐतिहासिक विश्लेषण

Artistic Narration 2021, Vol. XII, No. I, Article No. 12 pp. 073-078

https://anubooks.com/artistic-narration-no-xii-no-1-jan-june-2021/

सारांश

प्राचीन काल से ही किसी स्थान विशेष की पहचान उसकी स्थानीय कलाकृतियों तथा परम्पराओं से चिन्हित होती है, नई परम्पराओं तथा कृतियों में उस स्थान के इतिहास तथा संस्कृति की झलक प्राप्त होती है। भारत एक विविधताओं वाला देश है, इसके प्रत्येक क्षेत्र की अपनी एक भौगोलिक पहचान है। एक ही समय में कहीं अत्यधिक ठण्ड पड़ती है तो दूसरे भाग में अत्यधिक गर्मी। भारत के सुदूर उत्तर में स्थित लद्दाख अपनी ठण्डी जलवायु के लिए भारतवर्ष में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अत्यधिक ठण्ड होने के कारण यह भारत के मुख्य भाग से अलग–थलग रहा है किन्तू इस स्थान में उत्पन्न अनेक कृतियों तथा कलाओं ने इसे भारत के साथ–साथ विश्व में भी एक अलग पहचान प्रदान की है, इन्हीं कलाओं में लद्दाख की थंका चित्रकला लद्दाख को एक महत्वपूर्ण स्थान के रूप में प्रस्तुत करती है।

प्रस्तावना

लद्दाख में थंका चित्रकला में महायानी कला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। यह कला तिब्बत से आई। इस कला के सम्बन्ध में यदि ऐतिहासिक तथ्यों को खोजा जाये तो ज्ञात होता है कि महायानी थंका चित्रकला का प्रारम्भ तिब्बत में स्त्रोङ चाङ गम्पों के समय सातवीं शती से हुआ। इस समय राजा ने नेपाल एवं चीन की राजकुमारियों से विवाह किया। ये रानियाँ अपने आप अपने देशों से सुन्दर कलाकृतियाँ लाईं। राजा इन कलाकृतियों को देख बहुत प्रसन्न हुआ। उसने नेपाल तथा चीन से प्रसिद्ध कलाकारों को अपने देश आने का निमत्रंण दिया। राजा के नियंत्रण पर कई चीनी और नेपाली कलाकार तिब्बत आये। इन कलाकारों को राजा ने प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार चीनी एवं नेपाली कलाकारों ने मिलकर एक नई कला को जन्म दिया। यह आगे चलकर महायानी कला के नाम से जानी जाने लगी।[1]

महायानी कला के अन्तर्गत चित्रकला की प्रारम्भ में तीन पद्धतियाँ तिब्बत में प्रचलित थीं। ये पद्धतियाँ नेपाली, मगध और कश्मीरी परम्परा से प्रभावित थीं। इसके प्रमाण हमें तिब्बत के इतिहास में मिलते हैं।[2]

पंद्रहवीं शती के पश्चात् उक्त तीनों कलाशैलियों में परिवर्तन आया। परिवर्तन के इस दौर में अपनी–अपनी शैलियों के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए इन शैलियों ने स्वतंत्र रूप में अलग–अलग विकास प्रारम्भ कर दिया, पर प्रकृति को कुछ और ही मंजूर था। इस तरह का अकेलापन ज्यादा देर तक नहीं चल सका। तिब्बत में साम्प्रदायिकता का दौर था। बौद्ध धर्म कई उप सम्प्रदायों में बँट गया था। ऐसी स्थिति में अलग–अलग चित्रकला शैली का विकास सम्भव नहीं हो पा रहा था। परिणामस्वरूप तीनों कलाएँ एक–दूसरे में समाविष्ट हो गयीं। अब कला का यह मिश्रण सामने आया। यह मिश्रण भी अधिक समय तक नहीं चल सका।[3] तिब्बत में बढ़ते सम्प्रदायवाद को देखते हुए यह मिश्रित कला कहीं भी काम न आ सकी। दूसरी तरफ पुरानी विचारधारा अपने पूर्व कला अनुभव को खो चुकी थी। यह एक विराम का अवसर था। कलाकार न आगे बढ़ पा रहे थे, न पूर्व प्रचलित कलाओं का ही अनुकरण कर पा रहे थे। एक खींचतान–सी लगी हुई थी। विभिन्न कला–शैलियों के इस समुद्र मंथन ने चार नई कला शैलियों को जन्म दिया।–

1. मन–रिस (स्मन–बरिस)
2. मन–सर (स्मन–ग्सर)
3. खान–रिस (म्खान–बरिस)
4. गर–रिस (स्गर–बरिस)

पंदरहवीं शतीं के प्रारम्भ में 'मन–हा–डोन–रूब–ग्या–छो' (स्मन–ल्हा–डोन– ग्रूब–मस्छने) कलाकार का जन्म 'मन–थंग' (स्मन–थंग) में हुआ। यह स्थान तिब्बत के 'होड्राग' (ल्होड्राग) के दक्षिण में स्थित है। एक बार 'मन–हा–डोन–रूब–ग्या– छो' का अपनी पत्नी से किसी बात को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गया। यह मतभेद बढ़ते–बढ़ते इतना अधिक गहरा हो गया कि 'मन–हा–डोन–रूब–ग्या–छो' ने भावावेश में आकर अपनी पत्नी से तलाक ले लिया। इसके पश्चात् वह स्वयं 'सन्' (ग्तसन) राज्य में आ गये। यहाँ इनकी मुलाकात बौद्ध कला के गुरू 'डोपा–क्ररासिस–ग्या–छो' (रडोपा–ब्क्ररासिस–रग्या–ग्तछो) से हुई। गुरू ने 'मन–हा–डोन–रूब–ग्या–छो' को कला की परम्परा

समझाते हुए कहा, ''मन–हा– डोन–रूब–ग्या–छो, तुम्हें घर छोड़कर बिना किसी उद्देश्य के इधर–उधर नहीं घूमना चाहिए। अपने अमूल्य समय को पहचानने का प्रयास करो। इसे व्यर्थ में न गँवाओ।''

मन–हा–डोन–रूब–ग्या–छो ने गुरू जी की बातों को ध्यानपूर्वक सुनने के पश्चात् कहा, ''गुरू जी आपका कहना सही है पर मैं अज्ञानी क्या करूँ? मुझे किसी भी बौद्ध विद्या का ज्ञान नहीं है। मैं किसे और कैसे अपनाऊँ''

इस पर गुरू जी ने कहा, ''तुम घबराओ नहीं। संयम से काम लो। मैं तुम्हें चित्रकला की शिक्षा दूँगा। तुम मेरे साथ रहो।''

अब मन–हा–डोन–रूब–ग्या छो, गुरू डोपा करासिस–ग्या–छो के साथ रहने लगा। धीरे–धीरे गुरू की कृपा से मन–हा–डोन–रूब–ग्या–छो एक अच्छे कलाकार बन गये। वह परम्परागत बौद्ध कलाओं का गहन अध्ययन करने लगे। उन्होंने कला को और सुन्दर बनाने के लिए विभिन्न सुधार करने प्रारम्भ कर दिये। चित्रकला में परम्परागत नाप–तोप की विधियों में उन्होंने आनुपातिक संशोधन किया। फलतः प्राचीन कला पद्धतियों में सुधार लाया गया। नये–नये व्यंजनों की सहायता से नई कला विधाओं ने जन्म लिया। कालान्तर में चित्रकला की इस नई विधा को 'मन–हा–ढोन–रूब–ग्या–छो' नाम दिया गया।[4]

अब प्रश्न यह उठता है कि 'मन–हा–डोन–रूब–ग्या–छो' के प्रयासों से जिस कला का विकास हुआ उसका नाम 'मन–हा–डोन–रूब–ग्या–छो' ही क्यों रखा गया? इस प्रश्न के उत्तर के पक्ष में विद्वानों में सहमति नहीं है। ये लोग दो वर्ग में विभाजित हो गये हैं–

1. एक वर्ग यह मानता है कि 'मन–रिस' कला का प्रारम्भ 'मन–हा–डोन–रूब– ग्या–छो' ने किया इसलिए इसका नाम 'मन–हा–डोन–रूब–ग्या–छो' पर रखा गया।
2. 'मन–रिस' कला पद्धति का प्रारम्भ– 'मन–व्यंग' नामक स्थान से सर्वप्रथम हुआ, इसलिए इस कला का नाम स्थान के नाम पर 'मन–व्यंग' पड़ा।

मन–रिस सम्प्रदाय का विकास जब प्रगति पर था, तब 'गन–कर–गन–तोद' (गन–ग्कर–स्गन–स्तोद) में 'ख्येन–से–छेन–मो' (ख्येन–स्से–छेन–मो) नाम के एक प्रसिद्ध कलाकार ने जन्म लिय। इस कलाकार ने प्रचलित कला पद्धति में सुधार कर नई पद्धति की बुनियाद रखी और इसका नाम 'खान–रिस' (ग्खांन–हरिस) रखा।

सतरहवीं शती में 'ला–मा–छोस–यिन–ग्या–छो' (ब्ला–मा–छोस–डब्यिन– ख्या–मतछो) नाम के चित्रकार ने 'संग' (टसंग) राज्य में जन्म लिया। इन्होंने 'मन–रिस' चित्रकला पद्धति का सुधार कर नई कला पद्धति का विकास किया। कालान्तर में इसका विकास तिब्बत के परिश्रम में 'मन–रस' (स्मन–ग्सर) के अन्तर्गत हुआ।

कुछ समय पश्चात् यार–तोद (यार–स्तोद) में 'रूल–कु–नम–खा–रा–सिस' (स्परूल–स्कु–नम–म्खा–ब्करा–सिस) नाम के चित्रकार ने जन्म लिया। इस कलाकार ने पुनः प्रचलित कला में सुधार कर 'गर–रिस' (स्गर–टिरस) नई कला पद्धति को जन्म दिया। यह कलाकार 'कल–दन–सर–फोगस–पा–कोन–छोग–फन– दे' (स्कल–लदन–सर–फोगल–पा–डकोन–म्छोग–फन–दे) का शिष्य था। इन्होंने ऐसी कला पद्धति को जन्म दिया जो चीनी कला शैली से प्रभावित था। इनकी

चित्रकला की पृष्ठभूमि जिहु–थान से प्रभावित थी। इसका कारण वे 16 अर्हदों की चित्रकलाएँ हैं जिन्हें यह चीन से अपने साथ लाया था। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि 'कुं–नम–खा–रा–सिस' ने चीनी कलाकारों के प्रभाव में आकर अपनी चित्रकला का विकास किया। यह कला बाद में 'गर–रिस' (सगर–ब्रिस) के अन्तर्गत विकसित हुई।

छोस–जे–रा–सिस (छोस–रजे–ब्करा–सिर) और कर–सोद–करमा–रा–सिस (कर–सोद–करमा–ब्करा–सिर) ने इस चित्रकला का विकास करते हुए बहुत ख्याति पाई।

इस प्रकार यह कला तीन 'गर–रिस' कलाकारों 'कु–नम–खा–रा–सिस' 'छोस–जे–रा–सिस' और 'कर–सोद–करमा–रा–सिस' के द्वारा बहुत विकसित हुई।

तिब्बत में चित्रकला के विकास के साथ–साथ लद्दाख में भी इसका विकास पर्याप्त रूप में हुआ। लद्दाख में थंका चित्रकला को 'थंका रीमो' कहा जाने लगा। इसका विकास मुख्यतः दो रूपों में हुआ–

1. डी–डीस
2. उस–रीस

डी–डीस थंका चित्रकला पद्धति सोलहवीं शती में तिब्बत से लद्दाख आई। लद्दाख में इसका विकास तिब्बती कलाकारों के साथ–साथ हुआ।

उस–रीस चित्रकला के काल के बारे में कुछ भी स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। कुछ स्थानीय इतिहासकारों के अनुसार इस कला का विकास पंदरहवीं–सोलहवीं सदी में मध्य ल्हासा से हुआ। कालान्तर में इस कला को लद्दाखी कलाकारों ने ल्हासा से लद्दाख में फैलाया। इन कलाकारों में बौद्ध भिक्षु थे जो लद्दाख की गोम्पाओं से तिब्बत में उच्च शिक्षा हेतु जाया करते थे। इस कला का सोलहवीं सदी के मध्य लद्दाख में खूब प्रचार हुआ।[5]

उक्त कला पद्धतियों का लद्दाख में विकास यद्यपि पंदरहवीं–सोलहवीं शती में तिब्बत से हुआ, परन्तु लद्दाख में इससे पूर्व भी कई कला–शैलियाँ पनप रही थीं।

यह सर्वविदित है कि नवीं शती तक लद्दाख 'डारि–स्कोरसुम' के अधीन था। उस समय लद्दाख के अतिरिक्त कुगे, पुरांग और मंगयुल–ये तीन इसके प्रान्त थे। लद्दाख मंगयुल के अधीन था। 'कुगे' उस समय डारिस–स्कोरसुम की राजधानी हुआ करता था। यह उस समय बोन धर्म का केन्द्र भी था। बोन धर्म के प्रर्वतक 'मियो–शोनरबसा' का जन्म भी कुगे में ही हुआ था।

इस काल में पुरांग भी बहुत प्रसिद्ध था। यह बौद्ध धर्म का केन्द्र बना हुआ था। लोचावा रिनछेन जाङपो ने यहाँ थोलिङ–लाखङ (थोलिङगोम्पा) बनवाया जो बौद्ध कला से सम्पन्न था। यह 'कैलाश' के समीप था। 'थोलिङलाखङ' तीन मंज़िला था। इसकी दीवारों मे भित्ति–चित्र उत्कीर्ण थे। जब लोचावा 87 वर्ष के थे, दीपंकर श्रीज्ञान अतीश को तत्कालीन तिब्बत के राजा द्वारा आमंत्रित किया गया था। वह राजा के निमंत्रण पर तिब्बत गये तथा उसी समय उन्होंने थोलिङ–लाखङ का भी भ्रमण किया।[6] रिन–छेन जाङमो ने इन्हें एक सुन्दर कलाकृति भेंट करते हुए उनका स्वागत किया। कलाकृति को स्वीकारते हुए उन्होंने इसकी प्रशंसा में निम्न शब्द कहे–

मुझे तुम्हारी भेंट की गयी कलाकृति बहुत सुन्दर लगी। यह कृति अमूल्य है। इससे तुम्हारी

विद्वत्ता का प्रदर्शन होता है। मेरे विचार में आता है कि तुम बौद्ध विद्या के क्षेत्र में बहुत बड़े विद्वान हो। यदि मुझे ज्ञात होता कि ङा–रिस–स्कोर सुम में तुम जैसा विद्वान है तो मैं कदापि भारत देश से तिब्बत नहीं आता।''

आचार्य दीपंकर अपने समय के बहुत बड़े विद्वान एवं बौद्ध आचार्य थे। उन्होंने रिनछेन जाङपो को अपने ज्ञान से कला क्षेत्र में नई–नई दिशाओं को खोजने का अवसर दिया। उनके आशीर्वाद से रिनछेन जाङयो दसवीं शती के एक महान बौद्ध कला के विद्वान माने जाने लगे। तत्कालीन ङरिस राजा ने उन्हें कश्मीर भेजकर तिब्बत में बौद्ध कला के विकास के लिए कश्मीरी कलाकारों को लाने का अनुरोध किया। उन्होंने ङा–रिस स्कोरसुम में 108 गोम्पाओं और धार्मिक पूजन स्थल बनवाये। लद्दाख में उन्होंने अल्ची छोसखोर, लामायुरू में सिहों लाखङ, वनल्ला में अवलोकितेश्वर लाखङ, मीरू गोम्पा का लाखङ आदि महत्वपूर्ण गोम्पाओं का निर्माण किया तथा जाङस्कर और लद्दाख के श्याम क्षेत्र में कई छोर्तेन एवं छोटे–छोटे मन्दिर बनवाये।[7]

लद्दाख में चित्रकला का विकास तीन चरणों में हुआ–

1. कश्मीर चित्रकला
2. स्मनडिस चित्रकला
3. डी–डिस चित्रकला

प्रारम्भ में चित्रकला का विकास दसवीं–ग्यारहवीं शती में लोचावा रिनछेन जाङपों के प्रयासों से हुआ। इसके पश्चात् पंदरहवीं–सोलहवीं शती में स्मन डिस (स्मन–बरिस) का प्रचार लद्दाख में हुआ, विषेशकर राजा सिंहोंनामग्याल के काल में इसका पर्याप्त विकास हुआ। लगभग सत्रहवीं शती में मन–रस (डी डीस) का प्रचार लद्दाख में हुआ परन्तु इस कला को अधिक प्रोत्साहन नहीं मिला। वर्तमान में स्मन डिस (स्मन–बरिस) का लद्दाख में बहुत प्रचार है तथा लगभग सभी गोम्पाओं में इस पद्धति की चित्रकला को देखा जा सकता है। इस कला के विकास में निम्न दो कलाकारों का बहुत योगदान है–

1. छेरिङवाङदुस (नीमो)
2. लामा नवाङ पलजोर (लिङशेत गोनपा)

छेरिङवाङदुस को उनकी थंका चित्रकला के लिए 1977 में राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार दिया गया। उक्त थंका पर उन्होंने कालचक्र उत्कीर्ण किया था। 52 वर्षीय छेरिङवाङदुस सम्प्रति केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान में चित्रकला के पद पर कार्यरत हैं। इन्होंने अभी तक 1000 से अधिक थंका चित्र बनाये हैं। इसके अतिरिक्त सभी आधुनिक गोम्पाओं में भित्तिचित्रों को उत्कीर्ण किया है। थिकसे गोम्पा इसमें सम्मलित नहीं है।[8]

छेरिङ वाङदुस द्वारा निर्मित कुछ थंकाओं का विवरण निम्न है–

1. स्पीतुक गोम्पा (100 से ऊपर थंका)
2. शंकर गोम्पा (5 थंका)
3. स्कारा करचे गोम्पा (10 बड़ी थंका)
4. शचुकुल गोम्पा (8 बड़ी थंका)

5. शचुकुल दो बड़े घरों में (16 बड़ी थंका)
6. रूमचुङ गोम्पा (1 बड़ी थंका)
7. केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान (8 बड़ी थंका)

छेरिङवाङदुस के अनुसार उनके कुछ शिष्य अच्छे चित्रकार के रूप में उभर रहे हैं। इनमें से प्रमुख हैं–

1. छेरिङ भुटुप (मरछेलङ)
2. छेरिङ आङचुक (नीमू)
3. कोनछोक (चङथंक)
4. देवाङ नोरबू (ष्याम)
5. देवाङ दोर्जे (नुब्रा)
6. लामा डटुक (जाङस्कार)

इसके अतिरिक्त 53 वर्षीय लामा ईशे जमयङ अच्छे चित्र कलाकार हैं तथा डी–डिस कला के प्रचार में लगे हैं। एक अन्य चित्रकार छोस्तेर कश्मीरी कला से प्रभावित हुए। इन्होंने फियाङगोम्पा में कश्मीरी कला शैली में कई थंका तथा भित्ति चित्रों को बनाया।[9]

सारांश में यह कहना उचित होगा कि लद्दाख में स्मनडिस चित्रकला का विकास हो रहा है। इस कला को विकसित करने में छेरिङ वाङदुस अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. d fu'ke] v y Et bM] %*लद्दाख,* सागर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977, पृ० **370–371**
2. ग्यलसन, जमयङ : *'लद्दाखी वस्त्राभूषण–एक दृष्टि'*, अंक–1, अप्रैल–मई, 1992, पृ०–**31**
3. जीना, प्रेम सिंह : *'लद्दाखी शिरोभूषा–पेराख'*, शीराज़ा, अंक–6, फरवरी–मार्च, 1992, पृ०–**20**
4. जीना, प्रेम सिंह : *बौद्ध थाम लेह–लद्दाख,* हिन्दू चेतना, भाग–7, नई दिल्ली, जून 1988, पृ०–**21–23**
5. जीना, प्रेम सिंह : *'लद्दाख में बौद्ध कला का उद्‌भव एवं विकास'*, शिराजा, फरवरी–मार्च, भाग–6, 1991, पृ० **12–14**
6. जीना, प्रेम सिंह : *'दसवीं शताब्दी पूर्व में लाहुल में बौद्ध धर्म एवं संस्कृति'*, जनजाति मेला स्मारिका, 1993, पृ०– **60–62**
7. जीना, प्रेम सिंह : *'कश्मीर में बौद्ध चित्रकला एवं मूर्तिकला तथा उसका लद्दाख में प्रभाव'* (छठी शती से बारहवीं शती तक); लद्दाख प्रभा (5), 1987), पृ०–**56**
8. टुचि, जिवसेपपि : तिब्बत *'लैन्ड ऑफ स्नो,* आक्सफोर्ड प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृ०– **98**
9. राजदान, अवतार कृष्ण : *'कश्मीर में चित्रकला',* शीराजा, अंक 2–3, जून–सितम्बर 1984, पृ०–**16**